ISSN : 2229-7227
Price : ₹ 500
$ 70

Year : 6
Issue : 24
Oct. - Dec. 2016
www.chintanresearchjournal.com
Impact factor : 2.725

International Refereed

चिन्तन रिसर्च जर्नल

Chintan Research Journal

(कला, साहित्य, मानविकी, समाज–विज्ञान, विधि, प्रबंधन, वाणिज्य एवं विज्ञान विषयों पर केंद्रित)

(Indexed & Listed at : Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest . U.S.A.)
(Indexed & Listed at : Copernicus, Poland)
(Indexed & Listed at : Research Bib, Japan)
(indexed & Listed at : Indian Journal Index (IJINDEX))

संपादक
आचार्य (डॉ०) शीलक राम

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्

आचार्य अकादमी
भारत
ISO 9001 : 2008

Scanned with CamScanner

संस्कृत साहित्य

International Refereed
Impact Factor : 2.725

'चिन्तन' अन्तरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल (ISSN : 2229-7227)
वर्ष 6, अंक 24 (पृ.सं. 89-94)
विक्रमी सम्वत्: 2073 (अक्तूबर-दिसम्बर 2016)

वैदिक साहित्य में कृषि, उद्योग, वास्तु एवं स्थापत्य कला व व्यापार प्रबन्धन

डॉ. मूलचन्द
प्रवक्ता-संस्कृत
राजकीय लोहिया महाविद्यालय
चूरू (राजस्थान)

शोध-आलेख सार

वैदिक आर्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहता था। वैदिक काल में भारत की आर्थिक दशा पर्याप्त सुदृढ़ एवं सशक्त थी। वैदिक समाज आर्थिक सिद्धान्तों का भलीभांति परिपालन करता था। वर्ण व्यवस्था समाज में आर्थिक सुदृढ़ता के लिए ही रची गई थी। श्रम के बंटवारे से सामाजिक प्रचलन सुचारू रूप में विद्यमान था। उत्पादकता एवं खपत के साध न उत्कर्ष पर थे। कला एवं शिल्प के अनेक प्रमाण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं जो वैदिक समाज के लिए अत्युपयुक्त थे। वेदों में खनिज सम्पदा का भी पर्याप्त उल्लेख है जिसका एक प्रमाण अथर्ववेद के भूमि सूक्त (12.1) में उपलब्ध है। भूमि के लिए विश्वम्भरा, वसुन्धरा तथा हिरण्यवक्षा आदि विशेषण खान उद्योग प्रबन्धन की ओर इंगित करते हैं। भूमि के सम्यग् दोहन के अनेक प्रसंग वेदों में प्राप्त होते हैं। वेदों में व्यापार, व्यापारी, उद्योग प्रबन्धन आदि विषयों का वर्णन है। वेदों में वास्तुशिल्प एवं मूर्ति कला के भी प्रमाण मिलते हैं। वैदिक अयोध्यापुरी को नवद्वारा एवं अष्टचक्रा कहा है।

मुख्य-शब्द : वैश्य वर्ण, वास्तुशिल्प एवं मूर्ति कला, वास्तुकार तथा स्थापत्यकार, वैदिक वर्ण व्यवस्था ।

वैदिक साहित्य में कृषि, पशु, उद्योग, शिल्प एवं व्यापार प्रबन्धन के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते है। इस क्षेत्र में सामान्यत: वैश्य वर्ण के लोग प्रवृत्त होते थे। प्यापार उद्योग और सम्पदा के विकास से सम्बन्धित इस क्षेत्र में वैदिक काल के वैश्य गृहस्थी देश की प्रगति में योगदान करते थे।

वैदिक आर्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चार पुरुषार्थो की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहता था। वैदिक काल में भारत की आर्थिक दशा पर्याप्त सुदृढ़ एवं सशक्त थी। वैदिक समाज आर्थिक सिद्धान्तों का भलीभांति परिपालन करता था। वर्ण व्यवस्था समाज में आर्थिक सुदृढ़ता के लिए ही रची गई थी। श्रम के बंटवारे से सामाजिक प्रचलन सुचारू रूप में विद्यमान था। उत्पादकता एवं खपत के साधन उत्कर्ष पर थे। कला एवं शिल्प के अनेक प्रमाण वैदिक साहित्य में प्राप्त होते है जो वैदिक समाज के लिए अत्युपयुक्त थे। वेदों में खनिज सम्पदा का भी पर्याप्त उल्लेख है जिसका एक प्रमाण अथर्ववेद के भूमि सूक्त (12.1)

Scanned with CamScanner

में उपलब्ध है। भूमि के लिए विश्वम्भरा, वसुन्धरा तथा हिरण्यवक्षा आदि विशेषण खान उद्योग प्रबन्धन की ओर इंगित करते है। भूमि के सम्यग् दोहन के अनेक प्रसंग वेदों में प्राप्त होते हैं। वेदों में व्यापार, व्यापारी, उद्योग प्रबन्धन आदि विषयों का वर्णन है। वेदों में वास्तुशिल्प एवं मूर्ति कला के भी प्रमाण मिलते है। वैदिक अयोध्यापुरी को नवद्वारा एवं अष्टचक्रा कहा है।

कृषि

भोजन मनुष्यमात्र की परमावश्यकता है। कृषि के बिना मानव जीवन की सम्भावना कठिन है। समाज के भरण-पोषण के लिए कृषि ही एकमात्र साधन है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त अन्न, पुष्प, फल, मूल, कन्द कतिपय आश्रम वासियों का भरण-पोषण कर सकते है, सम्पूर्ण समाज का कदापि नहीं। कृषि मनुष्य की प्रथम आवश्यकताओं में से एक है। कृषि जन्य शस्य अनेक प्रकार की होती है। एक प्रदेश में एक प्रकार के शस्य उत्पन्न होते है, दूसरे प्रकार के शस्य किसी दूसरे प्रदेश में। अतः समाज की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृषि व्यापार प्रबन्धन की आवश्यकता होती है। इसका वैदिक साहित्य में पर्याप्त उल्लेख मिलता है। वेदों में कृषि एवं कृषि व्यापार प्रबन्धन को पवित्र व्यवसाय स्वीकारा गया है।

ऋग्वेद के चौथे मण्डल के सत्तावनवें सूक्त में तथा अन्यत्र अनेक सूक्तों में कृषि का वर्णन उपलब्ध होता है। उपर्युक्त सूक्त में क्षेत्रपति कृषक के लिए प्रार्थना की गई है। सूक्त में प्रतिपादित किया है कि खेत में हल चलाकर बीज वपन किया जाए। शस्य के पकने तक उसकी रक्षा की जाए तथा पकने पर उसे काटकर अन्न को अलग किया जाए।

कृषि के उपकरणों का भी विशद वर्णन उपलब्ध होता है। कृषि को उत्तम एवं सामान्य व्यवसाय के रूप में स्वीकारा किया गया है। कृषक को क्षेत्रपति एवं आदरणीय भाव से सम्बोधित किया है। ऋग्वेद 10.101 में भी कृषि एवं कृषक सम्बन्धी वर्णन है। कृषि उपकरणों में स्तेग, हल, लान्तल, सीता, सीर, अस्त इत्यादि प्रधान उपकरणों का वर्णन है। कृषिभूमि को दो भागों (उर्वरा एवं फर्वरा) में विभक्त किया गया है। उर्वरा भूमि को बीज वपनोपरान्त केदारों (क्यारियों) में बांटा जाता है। हल जोतने के लिए दो अथवा अधिक बैलों को जोड़ा जाता था। यह वर्णन ऋग्वेद (1.110) अथर्ववेद (6.91.1) तथा काठक संहिता (25.2) में विस्तार पूर्वक वर्णन है।

कृषि में शस्य के अनेक प्रकार है। वर्षभर ऋतु के अनुसार बोये जाते तथा काटे जाते थे। कृषि की अधिक फसलों को उत्पन्न करने के लिए परमेश्वर से प्रार्थना की जाती थी और प्रकृति के प्रकोप से बचने की कामना की जाती थी।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त (12.1) में कृषि एवं कृषक की प्रशंसा की गई है। कृषक से अपेक्षा की जाती थी कि वह फर्वरा भूमि को उर्वरा बनाए। इसके लिए गो-मूत्र एवं गोबर की खाद खेतों में डालने का भी विधान है, जिससे कृषि भूमि उर्वरा बनकर अधिक शस्यों को उत्पन्न करें।

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्यवनमीवा उपेतन।। (अथर्व. (3.14.3)

ऋग्वेद के (1.161.10) में भी गोमूत्र तथा गोबर की खाद से भूमि को उर्वरा बनाने तथा भूरि-मात्रा में फसलों के उत्पादन का उल्लेख है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त (12.1) में भी भूमि को उर्वरा बनाने के लिए कृषक को विशेष रूप से प्रयत्नशील रहने को कहा है-

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ।। (अथर्व. (12.1.7)

ऋग्वेद के (1.105.17, 1.55.8, 4.17.16, 8.62.6) इत्यादि स्थलों में वर्षाजन्य जल के अतिरिक्त कूप, तथा नहरी पानी के प्रयोग का भी उल्लेख है जिससे कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जा सके। खनित्रिमा आपः वाक्य शस्य सिंचन के लिए नहरी पानी के प्रयोग की ओर स्पष्ट संकेत है।

Scanned with CamScanner

कृषि में यव, धान्य, चना, तिल, मूंग, उड़द, प्रियंगु, मसूर इत्यादि फसलों का प्रधान रूप से उल्लेख है। वृहयश्चमे यवाश्चमे माषाश्चमे तिलाश्चमे मुद्गाश्च में प्रियंगवश्च में ऽजवश्च में श्यामाकाश्च में नीवाराश्च में गोधूमाश्च में मसूराश्च में यज्ञेन कल्पन्ताम्।। यजु. (18.12) इनमें से कतिपय शस्य स्वत: वन में उपजती थी।

कृषि के प्रसंग में पशु-पालन का भी महत्त्व वेदों में अनेकत्र उपलब्ध होता है। गौ, बैल, अश्व, कुता, भेड़, बकरी आदि पशुओं का वेदों में विशेष रूप में उल्लेख है। कतिपय पशुओं का उपयोग कृषि में भी किया जाता था। अथर्व (2.26, 3.12) ऋग्. (10.169)

उद्योग-

समाज की प्रगति में उद्योगों का भी कृषि जितना ही महत्व है। कृषि और उद्योग सापेक्ष व्यवसाय है, एक दूसरे के पूरक भी।

अथर्ववेद में कहा है कि हे प्रभो! मेरी बुद्धि को लोहे के औजार की भांति तीक्ष्ण बना दो चोदय धियमयसो न धाराम्। अथर्व. (6.47.10) ऋग्वेद में भी उद्योग-धन्धों में काम आने वाले उपकरणों तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के धातु निर्मित शस्त्रास्त्रों का वर्णन है-

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्। तथा रिष्टं रूतं मिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छति, इन्द्रायेन्दो परिस्रव।। ऋग्. (9.112.1) अर्थात् मानव अपनेविभिन्न कार्यों और कौशलों के अनुरूप अलग-अलग के उपकरणों का प्रयोग करता है। बढ़ई लकड़ी काटता है, वैद्य रूग्णों की चिकित्सा करता है। इस प्रकार उद्योग-धन्धों के कार्यों में निरत व्यक्ति प्रगति करता है तथा समाज को भी भरपूर योगदान करता है।

ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक काल में नागरिक सभ्यता का पर्याप्त विकास हो चुका था। विशाल भवन विद्यमान थे। उन्हें हर्य्य, प्रहर्य्य, सद्म, प्रसद्म, दीर्घ प्रसद्म आदि नामों से जाना जाता था। युद्धकाल में दुर्गों का प्रयोग शत्रु से स्वयं को सुरक्षित करने के लिए किया जाता था। बड़े रथों एवं नौकाओं, बैल गाड़ियों तथा घोड़ा-गाड़ियों का निर्माण भी किया जाता था। यातायात साधनों, वाहनों का निर्माण भी होता था। भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यापार दूरस्थ स्थलों के साथ भी किये जाते थे। इस प्रकार उद्योग, शिल्पकला के पर्याप्त प्रमाण वेदों में प्राप्त होते है।

सूत कातना, बुनना (ऊनी तथा सूती) भी वैदिक काल में घरेलू उद्योग के रूप में प्राप्त है। ऋग्वेद में (6.9.2.3, 10.71.9, 10.86.5, 2.3.6) अनेक स्थलों में तन्तु, तन्त्र, मयूख आदि शब्दों के द्वारा तन्तुवाय कला (कपड़ा बुनना) की ओर संकेत है।

कपड़ों के उद्योग के अतिरिक्त स्वर्णाभूषणों, शस्त्रास्त्र निर्माण तथा खनिज उद्योग के भी प्रसंग वेदों में उपलब्ध है। लौह तथा काष्ठ के उपकरणों एवं शस्त्रास्त्रों का निर्माण पर्याप्त मात्रा में होता था।

बर्तनों तथा घरेलू उपयोग की अन्य सामग्री का निर्माण इतना अधिक था कि कभी किसी वस्तु की अल्पता की ओर कहीं संकेत नहीं मिलता। चमड़े की वस्तुओं जैसे घोड़े की वल्गा, धनुष की रस्सी आदि की कभी अनुपलब्धता का कोई प्रसंग दृष्टिगोचर नहीं होता। यजुर्वेद में अनेक शिल्पियों का उल्लेख है, यथा- तक्ष, कौलाल, कर्मार, मणिकार, इषुकार, धनुष्कार, ज्याकार, रज्जु सर्ज, मृगयु, श्वनि, भिषक्, हस्तिप, अश्वप, गोपाल, रथकार, अविपाल, अजपाल, सुराकार, हिरण्यकार, वणिक्, ग्वालि आदि। यजु. (30.6) ऋग्. (9.112.3)

वास्तु कला एवं स्थापत्य कला

भवन निर्माण के नियमों तथा एतत्संबंधित अनेक विषयों का अथर्ववेद तथा ऋग्वेद में पर्याप्त यात्रा में उल्लेख है। अथर्ववेद में कहा है कि नव-निर्मित भवन में यज्ञ-शाला, महिलाओं के लिए कक्षों, अभ्यागतों तथा मनुष्यों के लिए कक्षों, सभाकक्ष, पाकशाला आदि की व्यवस्था हों।

Scanned with CamScanner

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः।
सदो देवानामसि देवि शाले।। अथर्व. (9.3.7)

शाला महाभवन आदि के निर्माण तथा प्रतिष्ठा के लिए अथर्ववेद में अन्यत्र कहा है कि भवन में गृहपति आठ कक्षों तथा दश कक्षों वाली शाला के बीच रहूं, जो शाला दो कक्षों वाली चार कक्षों तथा छः कक्षों वाली भी बनाई जाती है। शाला सूक्त नाम इस सूक्त में इकतीस मंत्र हैं। इनमें विस्तृत रूप में शाला निर्माण के विषय में चर्चा की गई है।

ऋग्वेद में भी वास्तुकार तथा स्थापत्यकार से प्रार्थना की गई है जिसमें कहा है कि इस प्रकार का गृह निर्माण किया जाए जिसमें शान्ति, सुख और नैरोग्य का वास हो। ऋग्वेद में अन्यत्र यह भी कहा है कि गृह के चारों ओर आने-जाने के मार्गों पर घास उगी हो, फूल खिले हों, सरोवर हो जिसमें कमल खिले हों। इस ऋचा में पर्यावरण रक्षा का भी ध्यान रखा गया है-

वास्पोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो मवा न यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।। या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते। ऋग्वेद (7.54.1) अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीअग्निर्मइवाशये। (अथर्व (9.3.21)

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः।
हृदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे।। ऋग्वेद (10.142.8)

ऋग्वेद में ही अन्यत्र कहा है कि भवन में धूप तथा वायु का प्रवेश अवश्य होना चाहिए-

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिश्रंगा अयासः।
अत्राह तदुरूगायस्य वृष्णः परमं पदमव माति वीरः।। ऋग्वेद (1.154.6)

एक और स्थान पर गृह निर्माता शिल्पियों को तीन नाम दिये हैं- कर्ता, विकर्ता तथा विश्वकर्मा। विशाल भवनों के निर्माण में (सहस्त्र स्थूणाः अयासः आदि) लौहस्तभों की आवश्यकता बताई गई है। ऋग्वेद के (5.62) सूक्त में एक स्थल पर बाइस प्रकार के भवनों के प्रकार कहे गये हैं। ऋग्वेद और यजुर्वेद में (ऋक् 4.36, 10.63, 2.58, 1.25, यजु 21.7, 21.6, 12.04 आदि) अनेकत्र विमान, जलयान, नौकाएं इत्यादि का सविस्तार से वर्णन है। यजुर्वेद में उद्योगों के प्रकारों का वर्णन है और ऋग्वेद में इनका विस्तृत वर्णन है। वहां अन्ताराष्ट्रीय व्यापार का भी संकेत है। वैदिक काल का उद्योग एवं व्यापार बुद्ध काल तक चलता रहा। इसका प्रमाण बौद्ध काल के ग्रन्थों में उपलब्ध है।

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के पन्द्रहवें सूक्त में विस्तार पूर्वक व्यापार एवं व्यापार प्रबन्धन का वर्णन है। इस सूक्त में न केवल अन्तर्देशीय व्यापार का ही वर्णन है, अपितु 'द्यावापृथिवी' अर्थात् पृथिवी एवं द्युलोक से होने वाले व्यापार का भी स्पष्ट संकेत उपलब्ध होता है-

इन्द्रमहं वणिजं चोदयाम सन् एत पुर एता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्।।
ये पन्यानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि।।
इध्मेनाग्न इछमानो घृतने जुहोमि हव्यं तरसे बलाय।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्।।
इमामग्ने शरणिं मीमृशो नो यमध्वानमगाम दूरम्।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विकयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च।।
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।

Scanned with CamScanner

तन्मे भूयो भवतु मा कनीयो ऋग्ने सातघ्नो देवान् हविषा निषेध।।
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तस्मिन् म इन्द्रो रूचिमादधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः।।

अथर्व. (3.15.1-6)

इत्यादि मंत्रों में पण्यकाम अथवा ऋषि ने इन्द्र और अग्नि देवों से प्रार्थना की है कि वे व्यापार मार्गों में बाधा पहुंचाने वाले, हिंसा करने वाले, दस्यु तथा व्याघ्रादि हिंसक प्राणियों से व्यापारी की रक्षा करें जिससे व्यापार से होने वाले लाभ में वृद्धि हो। व्यापारी प्रार्थना करता है कि जिन देशों से हम व्यापार करते है उन देशों के मार्ग घृत-दुग्ध से हमारी सेवा करने वाले हों जिससे मै क्रय-विक्रय द्वारा प्राप्त मूलधन को लाभ सहित घर तक ले आऊं।

अगले मंत्र में कहा है कि दूर-दूर तक देशविदेश में व्यापार करने के कारण जो हमारे (व्यापारी) व्रतों-नियमों आदि का लोप हो गया है, उस दोष को क्षमा करो। मुझे (व्यापारी को) इस सुदूर देशों में कष्ट सहने की शक्ति दो। क्रय-विक्रय दोनों मुझ व्यापारी के लिए लाभप्रद हों। मूलधन से बढ़ा हुआ लाभ का धन सुखकारी हो।

इस सूक्त में प्रयुक्त वणिजम् देवयानाः पन्थानः, अन्तरा द्यावापृथिवी, क्रीत्वा, प्रपणः,, प्रतिपणः, चरितम् और उत्थितम आदि शब्द महत्त्वपूर्ण है।

इसी प्रसंग में यजुर्वेद के छठे अध्याय के बीसवें मन्त्र में भी समुद्र गायन, अन्तरिक्ष गायन, नभोगायन द्यावापृथिवी गमन आदि का उल्लेख है-

समुद्रं गच्छ ..... अन्तरिक्षंगच्छ।
धावापृथिवीं गच्छ ..... दिव्यं नभो गच्छ।। यजु. (6.21)

इस मन्त्र में समुद्रगानादि उल्लेखों से जल व्यापार एवं आकाश मार्ग से व्यापार आदि का संकेत उपलब्ध होता है।

ऋग्वेद में भी कई स्थानों पर व्यापार-प्रबन्धन के उल्लेख विद्यमान हैं। निम्नलिखित ऋचा में व्यापार द्वारा मूलधन को दुगुना, तिगुना और चौगुना और आठ गुणा बढ़ाने की कामना की गई है-

एकपाद् भूयो द्विपदोंविचक्रमें द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदाममिस्वरे संपश्यन् पंक्तीरूपतिष्ठमानः।। ऋक्. (10.117.8)

लेकिन ऐसा व्यापारी जो छलकपट, धोखाधड़ी तथा अनुचित ढंगों से व्यापर में वृद्धि चाहता है, ऐसा पणि (व्यापारी) निन्दनीय माना जाता था-

न्यक्क्रतून्ग्रथिनो मृधवाचः पणीरश्रद्धां अवृधाँ अयज्ञान्।
प्र प्रतान् दस्यूँ रग्निर्विवाय पूर्व श्चकारापरां अयज्यून्।। ऋक्. (7.6.3)

कारपोरेट लाइफ इन एंसिएंट इंडिया में लिखा है कि पणि, श्रेष्ठिन् तथा गण आदि शब्द वैदिक है। इनसे प्रमाणित होता है कि वैदिक समाज एवं वैदिक अर्थव्यवस्था सुव्यवस्थित तथा सुदृढ़ थी। सुदृढ़ अर्थव्यवस्था तथा सुव्यवस्थित समाज के पीछे सुचारू व्यापार-प्रबन्धन था। जब तक किसी कार्य का प्रबन्धन सुचारू नही होता, तब तक वह कार्य सुव्यवस्थित तथा सफल नहीं हो सकता। वैदिक वर्ण व्यवस्था अर्थव्यवस्था के सही ढंग से चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही। समाज को शान्तिपूर्ण तथा सद्भावपूर्ण वातावरण में प्रगति की ओर अग्रसर करने में वैदिक वर्णव्यवस्था समाज को बांटने के लिए कदापि नहीं थी। समाज के कामों के बंटवारे के लिए इसकी संरचना की गई थी। वर्णव्यवस्था बाद में आकर समाज को जब बांटने लगी, तब इससे विपरीत परिणाम प्राप्त होने लगे। वैदिक काल में वर्णव्यवस्था ने समाज को कभी नही बांटा।

Scanned with CamScanner

अतः मुक्तकण्ठ से यह तथ्य स्वीकारा जा सकता है कि वैदिक व्यापार प्रबन्धन सभी क्षेत्रों में नितान्त सफल तथा उत्तरवर्ती व्यापार प्रबन्धन वैदिक व्यापार प्रबन्धन के आधार पर ही चले है।

संदर्भ

1. ऋग्वेद, दयानन्दभाष्य
2. यजुर्वेद, दयानन्दभाष्य
3. अथर्ववेद, दयानन्दभाष्य
4. संस्कृत साहित्य कोष, वामन आप्टे

Scanned with CamScanner